Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
January-June 2024 5(4), 1885–1889

DEVELOPMENT OF CRITICISM IN HINDI

हिन्दी में समालोचना का विकास

Khushbu Kumari [1], Ram Naresh Pandit [2], Kalyan Kumar Jha [3], Sakshee Shalini [4], Sushant Kumar [4]

[1] Research Student, University Department of Hindi, B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur, India
[2] Principal, Jeewachh Mahavidyalaya, Motipur B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur, India
[3] Professor, University Department of Hindi, B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur, India
[4] Assistant Professor, University Department of Hindi, B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur, India

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i4.2024.5489

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: The literal meaning of criticism is to see. The proper explanation of the merits and demerits of any object, element, subject, style and work is called Samalochana. In Hindi literature, the word 'Samalochana' is a gift of Sanskrit. The words Samiksha and Samalochana are used as synonyms of the word Aalochana. Expressing opinion on the work by discussing its beauty and demerits is Samalochana.

Hindi: समालोचना का शाब्दिक अर्थ है- देखना। किसी भी वस्तु, तत्व, विषय, शैली व कृति के संदर्भ में गुण-दोषों की सम्यक् व्याख्या का नाम समालोचना है। हिन्दी साहित्य में 'समालोचना' शब्द संस्कृत की देन है। आलोचना शब्द के पर्याय के रूप में समीक्षा और समालोचना शब्द का प्रयोग होता है। कृति के सौन्दर्य एवं दोषों का विवेचन करके इस पर मत व्यक्त करना समालोचना है।

Keywords: Samalochana, Aalochana, Samyak, Prakrit, Apabhransha, Chhayavadi, Kavyashastriya, समालोचना, आलोचना, सम्यक, प्राकृत, अपभ्रंश, छायावादी, काव्यशास्त्रीय

1. प्रस्तावना

साहित्य सम्बन्धी सिद्धान्तों के लिए प्राकृत, अपभ्रंश आदि परवर्ती भाषाएं प्रायः संस्कृत पर ही आश्रित रही। आचार्य 'नन्ददुलारे वाजपेयी' लिखते हैं- ''प्रत्येक युग का रचनात्मक साहित्य ऐसी आलोचना का विकास करता है जो कि उसके अनुरूप होती है और इसी प्रकार प्रत्येक युग की आलोचना भी उस युग की रचना को अपने अनुकूल बनाया करती है। वस्तुतः देश और समाज की परिवर्तनशील प्रवृतियां ही एक ओर साहित्य-निर्माण की दिशा निश्चय करती हैं और दूसरी ओर समीक्षा का स्वरूप भी निर्धारित करती हैं।''

2. मुख्य भाग

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के संदर्भ में डॉ. उत्तम कुमार शुक्ल लिखते हैं कि ''छायावादी काव्य का विरोध 'सरस्वती', 'विशाल भारत', 'सुधा', और 'प्रभा' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से अनवरत होता रहा। ऐसे समय में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी 'छायावादी' कविता के समर्थन में एक समर्थ आलोचक बनकर सामने आये और उन्होंने तर्कपूर्ण एवं प्रामाणिक ढंग से छायावाद की व्याख्या सामाजिक संदर्भ मे करते हुए छायावादी काव्य की विशेषताओं का उद्घाटन किया।''[1]

रीतिकाल में सर्वांगनिरूपक काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के साथ-साथ रस, नायिका भेद एवं नख-शिख सम्बन्धी ग्रन्थ निर्मित हुए। इस काल में 'तुलसी गंग दुऔ भये सुकविन के सरदार' तथा 'सूर सूर तुलसी ससि' आदि कुछ समीक्षात्मक सूक्तियां भी उपलब्ध हैं। किन्तु इन सूक्तियों से कवि के कृतित्व की विशेषताओं का परिचय प्राप्त नहीं होता। अतएव इन्हें 'आलोचना' के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता। रीतिकाल एवं भक्तिकाल की कुछ रचनाओं पर टीकाएं अवश्य लिखी गयीं जिनमें काव्यगत विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। किंतु इन टीकाओं में अलंकार, रस-भावभेद, छन्द, नायिकाभेद इत्यादि का स्थूल विवेचन मात्र है। रीतिकालीन आचार्य कवियों का उद्देश्य रसिक जनों को काव्यशास्त्र का सामान्य परिचय करना था, अतः उनमें प्रौढ़ता, गम्भीरता और सूक्ष्मता का अभाव है। इन कृतियों का इतना मूल्य अवश्य है कि इन्होंने आधुनिक युग की समीक्षा के लिए द्वार खोला है।

3. भारतेन्दु युग

भारतेन्दु युग में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशित होने के साथ आधुनिक आलोचना का सूत्रपात हुआ। आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने आलोचना के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। स्वयं भारतेंदु की पत्रिका 'कविवचन सुधा' में उनके दो निबन्ध 'हिन्दी कविता' और 'नाटक' (1883 ई0) प्रकाशित हुए, जिनमें हम स्पष्टतः हिन्दी समालोचना के उद्भव स्त्रोत देख सकते हैं। ''वस्तुतः आलोचना का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में हो चुका था। कविवचन सुधा (1868 ई.) और हरिश्चन्द्र मैगजीन (1873 ई.) में प्रायः कुछ 'नोट' 'समालोचना' के नाम से निकला करते थे। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'मुद्राराक्षस' (1878 ई.) नामक नाटक की रचना तथा अपने ऐतिहासिक ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री की परीक्षा कर समालोचना के क्षेत्र का मार्ग प्रशस्त किया।''[2] भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के समान इनका 'नाटक' नामक ग्रंथ नाट्यशास्त्र सम्बन्धित सैद्धान्तिक आलोचना का ग्रंथ है। यह ग्रंथ अत्यन्त प्रौढ़ रचना है। इसमें प्राचीन भारतीय नाट्य शास्त्र एवं आधुनिक पाश्चात्य समीक्षा साहित्य का समन्वय करते हुए तत्कालीन हिन्दी के नाटककारों के लिए सामान्य नियम निर्धारित किये गये हैं, जिनमें स्थान-स्थान पर लेखक की मौलिक उद्भावनाएं प्रकट हुई हैं। अपने समकालीन नाटकों की यत्र-तत्र समीक्षा की गई है। इसी युग में पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं के गुण दोषों को लेकर टीका-टिप्पणियां प्रकाशित होने लगीं। बदरीनारायण चैधरी 'प्रेमघन' ने अपनी 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका में 'संयोगिता-स्वयंवर' और 'बंग-विजेता' पुस्तकों की समालोचना विस्तृत रूप में की। 'बालकृष्ण भट्ट' ने 'हिन्दी प्रदीप' में 'सच्ची समालोचना' शीर्षक से 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना की। इसी प्रकार पत्र-पत्रिकाओं में पं. अम्बिका प्रसाद व्यास, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, प्रतापनारायण मिश्र की आलोचनाएं प्रकाशित हुई। इनसे समालोचना शैली में उन्नति होती गयी। उपन्यास, निबन्धन आदि नवीन विधाओं के लिए प्राचीन लक्षण-ग्रन्थों का आधार नहीं लिया जा सकता था। अतएव आलोचक अपनी अपनी दृष्टि से कृति के गुण-दोषों का विश्लेषण प्रस्तुत करने लगे।

4. द्विवेदी युग)

सन् 1903 ई. में 'सरस्वती' के सम्पादक रूप में 'महावीर प्रसाद द्विवेदी' का हिन्दी समीक्षा-क्षेत्र में अवतरण हुआ। उनके आगमन से पूर्व गंगा प्रसाद अग्निहोत्री की 'समालोचना' (1896 ई0), अम्बिका दत व्यास की 'गद्यकाव्य मीमांसा' आदि ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे। द्विवेदी जी ने निर्णयात्मक आलोचना का प्रारंभ 'कालिदास की निरंकुशता' नामक पुस्तक से किया। 'विक्रमांकदेवचरित चर्चा' तथा 'नैषधचरित चर्चा' में परिचायत्मक समालोचना के उदाहरण उपस्थित किये। अपने ग्रन्थों में प्राचीन एवं नवीन कवियों के गुण-दोषों का विवेचन व्यंग्यात्मक शैली में किया। इन आलोचनाओं तथा समीक्षाओं से हिन्दी में तुलनात्मक आलोचना का साहित्य निर्मित हुआ। फिर भी वे आलोचनाएं काव्यशास्त्रीय परम्परा का अनुसरण अधिक करती थी, मौलिक चिन्तन, काव्य-प्रतिमानों का निरूपण अथवा साहित्यिक मूल्यों का निर्धारण इनमें कम दिखाई पड़ते हैं।

इसी अवधि में जगन्नाथदास रत्नाकर, राधाकृष्णदास, 'हरिऔध', पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि ने भी किसी न किसी प्रसिद्ध कवि के सम्बन्ध में आलोचना प्रस्तुत की। बख्शी जी का 'हिन्दी साहित्य विमर्श' एक विशिष्ट ग्रन्थ है। गंगाप्रसाद अग्निहोत्री द्वारा लिखि 'समालोचना' एवं डॉ. श्यामसुन्दर दास कृत 'साहित्यालोचन' भी उल्लेखनीय है।

5. शुक्ल युग

''द्विवेदी-युग के अन्तिम चरण में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का आलोचना के क्षेत्र में आगमन हुआ। उन्होंने तुलनात्मक आलोचना के स्थान पर विवेचन एवं व्याख्यामूलक आलोचना पर बल दिया। इनकी समीक्षा मे पारम्परिक शास्त्रीय दृष्टि और सामाजिक मूल्यों को महत्त्व देने वाली नैतिक दृष्टि का संश्लिष्ट रूप विकसित हुआ। आचार्य शुक्ल हिन्दी आलोचना के शिखर-पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हुए।''[3] हिन्दी समालोचना को समर्थ स्वरूप देकर उसे शिखर तक पहुंचाने वालों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का नाम अग्रणी है। उन्होंने स्थूल नैतिकता या भौतिक लाभ हानि के प्रश्न को त्याग कर साहित्य की सूक्ष्म शक्ति-भावनाओं के उद्वेलन की शक्ति-को साहित्य की कसौटी के रूप में अपनाया। शताब्दियों तक प्राचीन रस-सिद्धान्त को नया जीवन प्रदान किया। साधारणीकरण सिद्धान्त का पुनरूत्थान किया गया। शुक्लजी ने भारतीय और पाश्चात्य समालोचना सिद्धान्तों का गम्भीर अध्ययन एवं सुन्दर समन्वय करके हमारे सामने आलोचना का स्वतन्त्र एवं मौलिक रूप

प्रस्तुत किया। उन्होंने समालोचना के सैद्धान्तिक स्वरूप को पुष्ट करते हुए उसे व्यावहारिक समालोचना में ढाला। साहित्य में लोकमंगल और लोकसंग्रह की भावना को प्रश्रय देते हुए हिन्दी की समालोचना को नये क्षितिज प्रदान किये जिससे उसका विविधमुखी विकास भी हुआ।

शुक्लजी के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में पहली बार हिन्दी साहित्य को सुसंगत विधि में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। इसमें हिन्दी साहित्य के विभिन्न युगों में प्रचलित अन्यान्य प्रवृतियों का अत्यन्त प्रामाणिक विवेचन किया गया है और साहित्यकारों के कृतित्व की समीक्षा भी प्रस्तुत की गयी है।

शुक्ल जी के समकालीन अन्य समीक्षकों में डॉ. श्यामसुन्दर दास, बाबू गुलाबराय, नन्ददुलारे वाजपेयी, पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, चन्द्रबली पाण्डेय, कृष्णशंकर शुक्ल, रामदहिन मिश्र, कन्हैयालाल पोद्दार, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि का नाम उल्लेखनीय है।

शुक्ल युग में हिन्दी समालोचना ने जहां अपना एक स्वरूप ग्रहण किया था वहीं वह विविधमुखी होकर विस्तार से विकास की गति को भी प्राप्त होने लगी। इस युग की आलोचना स्वस्थ सिद्धान्तों की नींव पर खड़ी होकर प्रौढ़त्व को प्राप्त हुई है। आज जितनी भी आलोचना पद्धतियां और आलोचक दिखाई दे रहे हैं, सभी का मूल उत्स इस युग की समालोचना में भलीभांति देखा जा सकता है।

6. शुक्लोतर हिन्दी आलोचना

शुक्ल युग में समालोचना का विकास विविधमुखी रूप में हुआ। शुक्लयुग में प्रचार पा गयी ये शैलियां ही आगे समालोचना के विकास की नियामक भी बनीं। शुक्लोतर हिन्दी आलोचना को स्वरूप की दृष्टि से मुख्यतः दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है- 1. सैद्धान्तिक और 2. व्यावहारिक

1) सैद्धान्तिक आलोचना

प्रामाणिक रूप से स्वीकार किये जानेवाले अर्थ को सिद्धान्त कहते हैं। बहुत सी समान कृतियों का अध्ययन कर जब आलोचक आलोचना के मापदण्ड के रूप में किन्हीं सामान्य नियमों का निर्धारण करता है तो उस समीक्षा को सैद्धान्तिक समीक्षा कहते है। रीतिकाल के लक्षण ग्रन्थ, श्यामसुन्दर दास का साहित्यालोचन आदि इसी प्रकार के ग्रन्थ हैं।

आचार्य शुक्ल के अनन्तर सैद्धान्तिक समीक्षा को आगे बढ़ाने में डॉ. गुलाबराय, रामदहिन मिश्र, डॉ. नगेन्द्र, आचार्य बलदेव उपाध्याय, लक्ष्मीनारायण सुधांशु, डॉ. रामलाल सिंह ने विशेष योग दिया।

डॉ. गुलाबराय ने 'नवरस', 'हिन्दी नाट्य-विमर्श', काव्य के रूप 'सिद्धान्त और अध्यन' आदि ग्रन्थों की रचना की। इनमें विभिन्न भारतीय और पाश्चात्य काव्य सिद्धान्तों तथा काव्य के रूपों की व्याख्या अत्यन्त स्पष्ट नूतन एवं रोचक शैली में प्रस्तुत की गई है। रामदहिन मिश्र संस्कृत परम्परा के आचार्यों में आते हैं। उन्होंने अपने अनेक ग्रन्थों 'काव्य-दर्पण' 'काव्यालोक' काव्य में अप्रस्तुत योजना' आदि में भारतीय काव्य सिद्धान्तों, अलंकारों व शब्द शक्तियों की विवेचना स्पष्ट रूप में करते हुए उनकी तुलना कहीं कहीं पाश्चात्य सिद्धान्तों से भी की है।

2) व्यावहारिक आलोचना

आलोचना की इस प्रणाली के अंतर्गत सैद्धान्तिक आलोचना द्वारा निश्चित किये गये सिद्धान्तों की कसौटी पर कृति विशेष अथवा साहित्य की प्रवृति विशेष का विश्लेषण और मूल्यांकन किया जाता है। आचार्य शुक्ल के अनन्तर व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रतिभाशाली आलोचकों का अवतरण हुआ। उन्हें मुख्यतः चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं-

क. शुक्ल परम्परा के आलोचकः-

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की 'हिन्दी साहित्यः बीसवी शताब्दी' (1942 ई0) में विभिन्न प्रवृतियों के प्रतिनिधि साहित्यकारों का मूल्यांकन नूतन दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। इसके अनन्तर उनकी अनेक कृतियां प्रकाश में आई हैं तथा -

आधुनिक साहित्य, जयशंकर प्रसाद, सूरदास, नया साहित्यः नये प्रश्न आदि। इनकी समीक्षा पद्धति को सौष्ठववादी कहा गया है जो विशुद्ध कलात्मक एवं सौन्दर्यवादी तत्वों पर आधारित है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र कृत 'हिन्दी साहित्य का अतीत' (दो भाग) वृहद ग्रन्थ है। इसमें ऐतिहासिक क्रम से प्राचीन कवियों का मूल्यांकन निजी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। 'बिहारी की वाग्विभूति, 'बिहारी वाङ्मय विमर्श' हिन्दी का सामयिक साहित्य आदि इनके महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

डॉ. इन्द्रनाथ मदान हिन्दी में अंग्रेजी साहित्य का प्रौढ़ ज्ञान लेकर अवतरित हुए। उनका दृष्टिकोण पूर्वाग्रह एवं पक्षपात से मुक्त है। प्रेमचंद: एक विवेचन, 'आलोचना तथा काव्य', 'आधुनिक कविता का मूल्यांकन' आदि उल्लेखनीय कृतियां हैं। डॉ. मदान साहित्यकार की व्यष्टि प्रेरक शक्ति पर बल देते हुए उसकी कृति का बौद्धिक विश्लेषण प्रस्तुत करते है।

साहित्य-समीक्षा को अधिक सन्तुलित एवं वैज्ञानिक रूप प्रदान करने की दृष्टि से डॉ. सत्येन्द्र के प्रयास महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपनी 'साहित्य की झांकी', 'गुप्त जी की कला', 'प्रेमचन्द की कहानी कला' 'हिन्दी एकांकी' आदि कृतियों में विषय का सूक्ष्म वर्गीकरण-विश्लेषण किया है।

(ख) मनोविश्लेषणवादी आलोचकः-

आधुनिक मनोविज्ञान की एक नयी शाखा 'मनोविश्लेषण' की स्थापना फ्रायड, एडलर, युंग आदि मनोविश्लेषकों द्वारा हुई है। इन्होंने जीवन, साहित्य और कला के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। फ्रायड के अनुसार काम-वृति ही जीवन की सर्वप्रमुख शक्ति एवं प्रेरणा है। साहित्य साहित्यकार की दमित काम वासना की ही अभिव्यक्ति है। फ्रायड के शिष्य एडलर ने कामवृति के स्थान पर हीनता की पूर्ति की प्रवृति को ही जीवन और साहित्य की प्रमुख शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। फ्रायड के अन्य शिष्य युंग ने इन दोनों का विरोध करते हुए जीवनेच्छा या अमर होने की आकांक्षा को ही जीवन की प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकार किया है।

हिन्दी में इस व्याख्या-पद्धति का प्रतिनिधित्व इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, डॉ. देवराज, डॉ. नगेन्द्र आदि ने किया। इलाचन्द्र जोशी ने अपने उपन्यासों में मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों का विशेषतः एडलर के सिद्धान्तों का उपयोग किया है।

(ग) प्रगतिवादी आलोचनाः-

हिन्दी के अनेक आलोचकों ने प्रगतिवादी दृष्टिकोण से साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत की है। डॉ. रामविलास शर्मा प्रकाश चन्द्र गुप्त, शिवदान सिंह चैहान, अमृतराय, डॉ. नामवर सिंह आदि मुख्य प्रगतिवादी आलोचक हैं।

'डॉ. रामविलास शर्मा' का नाम माक्र्सवादी समीक्षकों में अग्रणी है। वे आदर्शवाद का विरोध करते हैं। अपनी समीक्षा पद्धति में वर्ग संघर्ष एवं समाज में मनुष्य की आर्थिक स्थिति को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। निराला को साहित्य में शीर्ष स्थान दिलाने में इनका बड़ा योगदान है। समीक्षा में डॉ. शर्मा को सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि प्राप्त है। उनकी शैली विचारोतेजक, चुस्त एवं मौलिक है। ''रामविलास शर्मा में वायवीयता और अटकल ज्यादा है जिससे उनकी आलोचना में स्फीति और अनावश्यक फैलाव है। सैद्धांतिक कट्टरता भी बहुत है।''[4]

'प्रो. प्रकाश चन्द्र गुप्त' ने आधुनिक हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट शैली में किया है। 'आधुनिक साहित्यः एक दृष्टि', 'नया हिन्दी साहित्यः एक दृष्टि' आदि उनकी महत्वपूर्ण कृतियां है।

'शिवदान सिंह चैहान' की कृतियां इनके व्यापक प्रगतिशील दृष्टिकोण और प्रौढ़ चिन्तन की परिचायक है। साहित्य की परख, प्रगतिवाद, हिन्दी साहित्य के 80 वर्ष, 'साहित्य की समस्याएं' 'साहित्यानुशीलन' आदि उनकी प्रमुख कृतियां हैं। 'अमृतराय' की प्रगतिशील विचारधारा नयी समीक्षा, साहित्य की संयुक्त मोर्चा आदि में व्यक्त हुई है।

'डॉ. नामवर सिंह' प्रगतिवाद समीक्षकों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। ये मार्क्सवादी आलोचक तो हैं किंतु उनके कट्टरवाद से बचे हुए हैं।

(घ) नयी आलोचना या समीक्षा

नयी कविता और नयी कहानी के समान छठे दशक की लगभग समाप्ति के समय आलोचना के क्षेत्र में नयेपन ने प्रवेश किया। नयी आलोचना 'जॉन क्रो रैन्शम' कृत 'द न्यू क्रिटिसिज्म' तथा शिकागो स्कूल के आलोचकों से प्रभावित है। नयी समीक्षा में काव्य के रूप एवं शिल्प सौन्दर्य को ही केन्द्रिय तत्व मानकर उनकी विवेचना की गई है। इसमें रचना के काव्यार्थ को विश्लेषित करने के साथ-साथ पाठ विश्लेषण, शब्द कौशल, वर्ण योजना, शब्द चयन, बिम्ब विधान, प्रतीक विधान, अलंकार आदि सभी तत्वों का विश्लेषण किया जाता है।

नयी आलोचना के क्षेत्र में डॉ. देवराज कृत छायावाद का पतन, साहित्य चिंता; मुक्तिबोध कृत कामायनीः एक पुनर्विचार, एक साहित्यिक की डायरी, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र; डॉ. रघुवंश का साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य; नेमिचन्द्र जैन का अधूरे का साक्षात्कार; लक्ष्मीकांत वर्मा का 'नयी कविता के प्रतिमान; डॉ. नामवर सिंह के कविता के नये प्रतिमान' कहानी और कहानी: डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के 'नवलेखन तथा भाषा और संवेदना, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास आदि उल्लेखनीय है।

''साहित्य के क्षेत्र में आलोचना से अभिप्राय है कि किसी साहित्यिक कृति का सांगोपांग निरीक्षण। इसके अन्तर्गत तीन कर्तव्य-कर्म आते हैं- 1. प्रभाव-ग्रहण, 2. व्याख्या-विश्लेषण और 3. मूल्यांकन अथवा निर्णय। आलोचना मूलतः कलाकृति द्वारा प्रमाता के हृदय में उत्पन्न प्रभाव को व्यक्त करती है, अर्थात् प्रिय-अप्रिय प्रतिक्रिया को व्यक्त करती है। इसके उपरान्त वह प्रतिक्रिया की प्रियता अथवा अप्रियता के कारणों का विश्लेषण करती है; सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार रूप का, मनोविज्ञान के अनुसार स्रष्टा और भावक की मानसिक परिस्थितियों का और समाजशास्त्र के अनुसार दोनों की सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण कर यह स्पष्ट करती है कि कोई कलाकृति भावक को प्रिय अथवा अप्रिय क्यों लगती है। और अन्त में इन दोनों प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसका मूल्यांकन कियाजाता है। आलोचना के अन्तर्गत ये तीन प्रतिक्रियाएँ आती हैं- किसी-न-किसी रूप में आलोचना इन तीनों कर्तव्यों का निर्वाह करती है, अवाधारणा का भेद हो सकता है, किन्तु सामालोचना में प्रायः इन तीनों में से किसी की उपेक्षा करना कठिन ही होता है।''[5]

हिन्दी आलोचना का सृजन और विकास भी नव-जागरण और स्वाधीनता आन्दोलन के दौर में हुआ इसलिए सामाजिक चेतना इसकी घुट्टी में पड़ी है। हिन्दी आलोचना की सामाजिक चेतना पर गांधीवाद और मार्क्सवाद का प्रभाव है किन्तु सामाजिक चेतना हिन्दी आलोचना में उनके कारण नहीं आई है वह पहले से मौजूद थी।

''हिन्दी आलोचना की संस्कृति हिन्दी आलोचना की पारंपरिक उपलब्धियों में निहित है। आलोचना की आलोच्यपरकता और दृष्टि प्रसार में है। हिन्दी आलोचना को पन्डिताउ कहते हैं, प्राध्याय कहते हैं किन्तु वह अन्धश्रद्धा और मूर्ति पूजा से जड़ताग्रस्त नहीं रही।''[6]

इन आलोचकों ने अपने पूर्ववर्ती आलोचकों की तीव्र आलोचना की है और हिन्दी आलोचना का विकास किया है, बोध परिसर व्यापक किया है और आलोचना की संस्कृति का रूप निर्मित किया है।

लक्ष्यरहित और केन्द्ररहित यथास्थिति को बनाए रखने में साधक होती है। इतिहास के सामने कोई प्राथमिकता नहीं रह जाती। फूको ने एक इंटरव्यू में कहा- पश्चिमी दुनिया के सामने गरीबी की समस्या प्राथमिक नहीं है। ''स्ट्रेटजीज आफ पावर।'' क्या भारत के लिए भी यह गरीबी की समस्या प्राथमिक नहीं है।

''इतिहास को गतिहीन और लक्ष्यहीन बना देना उसे पंगु और अन्धा बना देना है। हमारी समस्याएँ विशिष्ट हैं उदाहरण के लिए दलित चेतना जिस रूप में भारत में है, योरोप में नहीं है। हमारा साहित्य हमारी जनता की विशिष्ट स्थितियों को चित्रित करके रचा गया है।''[7]

7. निष्कर्ष

समालोचना के दो पक्ष है- पहला व्याख्या, दूसरा मूल्यांकन। संस्कृत साहित्य की व्याख्या व टीका परम्परा का यथावत् रूप हिन्दी साहित्य के आलोचना के रूप में अवतरित हुआ। भारतेन्दु युग में आलोचना का उदय हुआ। द्विवेदी युग में आलोचना का विकास हुआ। समालोचना के क्षेत्र में नयी दिशा देने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। आलोचना और समीक्षा से हिन्दी में तुलनात्मक आलोचना का विकास हुआ। रचना के सहारे संस्कृति की आलोचना करना आलोचना की संस्कृति है।

संदर्भ-सूची

1. हिन्दुस्तानी त्रैमासिक, जनवरी-मार्च, 2007, संपा. डॉ. अनिल कुमार सिंह, 'हिन्दी आलोचना: वर्तमान परिदृश्य', डॉ. उत्तम कुमार शुक्ल, पृ. 33
2. हिन्दुस्तानी त्रैमासिक, जनवरी-मार्च, 2007, संपा. डॉ. अनिल कुमार सिंह, 'हिन्दी आलोचना: वर्तमान परिदृश्य', डॉ. उत्तम कुमार शुक्ल, पृ. 31
3. हिन्दुस्तानी त्रैमासिक, जनवरी-मार्च, 2007, संपा. डॉ. अनिल कुमार सिंह, 'हिन्दी आलोचना: वर्तमान परिदृश्य', डॉ. उत्तम कुमार शुक्ल, पृ. 32
4. हिन्दुस्तानी त्रैमासिक, अप्रैल-जून, 2004, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सम्पादक डॉ. अनिल कुमार सिंह, 'हिन्दी आलोचना पर छायी धुंध को हटाने का सजग प्रयास, डॉ. महेन्द्र नाथ राय, पृ. 121-122
5. डॉ. नगेन्द्र, आस्था के चरण, पृ. 46
6. आवर्त, जनवरी-अगस्त, 2001, संपा. वीरेश चन्द्र, 'आलोचना की संस्कृति', विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ. 50
7. आवर्त, जनवरी-अगस्त, 2001, संपा. वीरेश चन्द्र, 'आलोचना की संस्कृति', विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ. 51